श्रीः ।

शीलसावित्री--नाटक ।

बाबूकन्हैयालाल भरतपुर प्रणीत.

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई.

स्वकीय "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानामें

छापकर प्रसिद्ध किया ।

संवत् १९५४, शके १८१९.

PREFACE.

My inclination has especially been bent during its composition towards the female education and reformation of their moral characters more than laying the story before the public. But that women often take much interest in stories I have selected these from Mahabharat as an instrument to express, my ideas in favour of the fair sex, and illustrated it dramatically to render it much more interesting. My readers will therefore see that I have barrowed many useful pieces from the works of distinguished authors to make up my purpose, and excuse me if they have come across any default or defaults in this little work, which is only the first out-come of my deficient and wanting knowledge at this season of immature taste and ability.

Truly yours
KANAKALAL
Head Clerk
Maharaj Paltaw, Bhurtpore
Imperial Service Infantry.
1897.

प्रस्तावना।

सज्जन महाशय !

आजमैं अत्यंत हर्षपूर्वक यह " शीलसावित्रीनाटक "आपलोगोंकी सेवामें प्रेरन करताहूं, मैं एक बिद्यार्थी पाठशाला भरतपुरका हूं अपनेपिता श्री मंगलसिंहजीकी आज्ञा और निज चित्तकी प्रेरणासे मैंने यह नाटक अपनी स्वल्प बुद्धि अनुसार लिखाहै आपलोग पाठकगणोंसे विनयपूर्वक प्रार्थना करताहूं और आशा रखताहूं कि जहां कही भूल रही हो और दोष पाइये शुद्ध करके ग्रंथकर्ताको कृतार्थ कीजिये–

इस आशयको मैने अंगरेजी पुस्तकमें बाबू राज किशनदास साहब हेडमास्टर राज्यस्कूल भरतपुरसे पढाथा फिर उसीस्कूलके संस्कृत अध्यापक श्रीपंडित केदारनाथजी महाराजसे इस बिषयको सुना उसीसमय से मेरे मनमें इस कथा को स्त्रियोंके लिये लाभदायक समझकर यह बिचार हुआ कि इसको नाटकरूप में लिखना योग्यहै उक्त पण्डितजी महाराजकी सहायतासे लिखना प्रारंभ कर दिया परंतु बडे शोककी बातहै कि इसके अंत होनेपर उक्त महाराजके देहांत होने कारण यह उनके करकमल तक नही पहुचसका–

इस नाटकके बनानेमें मुझे इन पुस्तकोंसे बहुत सहायता मिली–

शकुन्तला नाटक,सत्य हरिश्चंद्र नाटक. सुखसागर, स्त्री धर्मामृत बर्षिणी इत्यादि–

पहिले इसके कि नाटक प्रारंभ किया जावे कुछ संक्षेप रीतिसे कथा बर्णन करताहूं–

किसीसमय मद्रदेशमें एक अश्वपती नाम राजा राज्य करताथा। उसकी कन्या सावित्री अति रूपवती और सर्व गुण सम्पन्ना थी उसके रूपकी प्रशंसा सुन कर कोई राजा उसके विवाहनकी याचना नही करताथा जब सावित्री योवन अवस्थाको पहुची तो उसके पिताने कहा कि तूही अपने योग्य कोई बरढूंढल निदान वह कन्या अपने पिताकी आज्ञानुसार वरके खोजमें गई शलवा देशका राजा द्युमतसेन बृद्धावस्थाके कारण अन्धा होगयाथा और मंत्रीलोग उसे निकाल कर राज्य दबाबैठेथे उनका एक पुत्र सत्यवान नाम उनकेपास उसीबनमें रहताथा वहभी रूप और गुणमें सावित्रीकेही समानथा दैवयोगसे सावित्रीने उसी सत्यवानको बरा और अपने पितासे आकर यह बृतांत कहा तो महाराज नारद मुनिने जो उस समय वहां बिराजे हुएथे कहाकि सत्यवानकी आयुका केवल

एकही बर्ष और है फिरतो अश्वपतीने अपनी पुत्रीको बहुत बर्जा परंतु उसने न माना तब राजाने उसका विवाह सत्यवानकेही साथ करादिया और अपनी बेटीको उसके भाग्यपर छोडदिया–

एक समय जब सत्यवानकी मृत्युका दिनआया तो दैवइच्छा से वह उसी दिन अपने पिताके निकट पुष्पादिक लेनेको बनमें जानेलगा सावित्रीको तो यहदिनमालमहीथा द्युमतसेनकी आज्ञा लेकर अपने पतिके साथही गई सत्यवान और सावित्री तो सैर करतेहुए बहुत दूर निकलगये अबयहां द्युमतसेनको शंका हुई और रोते पीटते अपनी स्त्री सहित उनके ढूंढनेको निकले मार्गमें यमराजको सत्यवानका जीव लानेके वास्ते जाताहुआ सुना फिरतो व बिचारे बहुतही बिललाप करतेहुए भटकते फिरे वहा सत्यवान बहुत दूर जाकर एक वृक्षके नीचे बिश्राम लेनेको बैठगया और कुछ बिलम्बके पीछे उस वृक्षमेंसे लकडी काटनेलगा अधिक परिश्रमसे थकित होगया और अपनी भार्य्याकी जंघा पर शिरधरके लेटगया थोडी देरमें उसे मूर्छा आगई और यमराज उसका जीवलनेको आनपहुंचे यमराज सत्यवानका जीव लेकर चलने लगे तो सावित्रीभी उनके पीछे दौडी चलीगई और अपने मधुर सम्भाषण से प्रसन्नकरके पांच वरलिये अर्थात अपने श्वशुरके नेत्र, उसका गयाहुआ राज्य, अपने भ्राताओंका जन्म, अपने पुत्रोंका जन्म और अपने पतिका जीव फिर सत्यवान सजीव होगया और दोनों स्त्रीपुरुष अपने माता पिता समेत शलवा देशको गये

द्युमत सनको राजहुआ और आनंद बिनोदमें दिन व्यतीत करते रहे–

इति प्रस्तावना.

आपका कृपाकांक्षी
कन्हैयालाल
भरतपुर.

नाटक पात्र.

अश्वपती	(अ०)	मद्रदेशकाराजा
मालवी	(मा०)	अश्वपतीकी रानी
साविर्त्री	(सा०)	अश्वपतीकी कन्या
सुलोचना	(सु०)	साविर्त्रीकी सखी
द्रुमतसेन	(द्रु०)	शलवादेशका राजा
शैल्या	(शै०)	द्रुमतसेनकी रानी
सत्यवान	(स०)	द्रुमतसेनका पुत्र
यमराज	(य०)	मृत्युका देव
गौतम	(गौ०)	एक ऋषि
शिष्य	(शि०)	गौतमकाशिष्य
ब्राह्मण	(ब्रा०)	एक आश्रमवासी

(विदूषक, द्वारपाल, नारद, प्रधान, द्वारपाल सारथी)

नाटक-भाषापुस्तकोंकी संक्षिप्त-सूची।

कीं० रु० आ०

हनुमन्नाटक रामगीत भाषा-कविहृदयरामकृत अति
ललित सवैया कवित्तादि छन्दबद्धमें अति उत्तम है १-४

प्रल्हादनाटकलालाश्रीनिवासदासप्रणीत ०-६

माधवानलकामकंदलानाटक-ऐसाप्रीतिप्रवाह ग्रंथदेख-
नेहीके योग्यहै लालाशालिग्राम वैश्यकृत ०-१२

मौरध्वज नाटक-रौद्र वीर सत्यता और भक्तिमार्गी
करुणादिरससे परिपूर्ण भाषा लालाशालिग्राम कृत ०-८

वेणीसंहारनाटक भाषा-करुणा हास्य और शांत व रौद्र
रससे परिपूर्ण अत्युत्तम पण्डितज्वालाप्रसादजीकृत ०-१०

विवाहिताविलापनाटक भाषा ०-४

आनंदोद्भव नाटक-पण्डितकृष्णविहारीकृत ०-१

बालशिशुविवाहनाटक ०-२

सीतावनवास नाटक (गद्यपद्य) ०-६

मुद्राकुलीन अर्थात् मैसूर राज्यका इतिहास ०-१२

एज यू लाइक इट (शेक्स्पीयर कृत) नाटक
पु० गोपीनाथ एम. ए. जयपुर राजवकीलकृत १-०

संगीतशकुंतला नाटक भाषा ०-८

इन्द्रसभा नाटक (राजा इन्द्रकी सभाका वर्णन राग
रागिनियोंमें नाटकाकार) ०-४

अभिमन्युनाटक (करुणा, वीररसका एक अपूर्वही
दृश्यलालाशालग्रामजीने दर्शायाहै ०-१२

काव्य--भाषाग्रंथोंकी संक्षिप्त-सूची।

	कीं० रु० आ०
रामरसायन रामायन-रसिकविहारीकृत	४-०
रसिकप्रिया कविवरकेशवदासकृत (नायकाभेद) .	०-१२
रामचंद्रिका सटीक कवि केशवदास प्रणीत....	२-०
विज्ञानगीता केशवदासकृत (वेदान्त)	०-८
काव्यनिर्णयभाषा छन्दबद्ध [भिखारीदासकृत] मनहरण छन्दोंमें कठिन (नायका भेद) वर्णन	१-४
जगद्विनोद [पद्माकरकृत नायकाभेद]	०-८
रसराज [मतिरामकृत नायकाभेद]	०-६
ब्रजविलास बड़ा मोटेअक्षरका टिप्पणीसहित	४-०
ब्रजविलास मध्यमअक्षरपदच्छेद और टिप्पणीसहित विलायती जिल्द .... ग्लेज	२-०
तथा रफ कागजका	१-८
ब्रजविलास छोटा अक्षर	१-०
ब्रजचरित्र (श्रीराधाकृष्णजीकी सर्वलीला सुगम दोहा चौबोलोमें वर्णितहैं)	३-०
प्रेमसागर टाईपका बडा ग्लेज कागज़का.... ...	१-१२
प्रेमसागर टाईपका बड़ा रफ	१-४
भक्तमाला रामरसिकावली बडी, रीवाँधिपति महाराज रघुराजसिंहकृत अत्युत्तम छन्दबद्ध जिसमें चारोंयुगोंके भक्तोंकी भिन्न२ कथाहैं और द्वितीयावृत्ति उत्तर चरित्र समेत अत्युत्तम नई छपीहै	४-०
भक्तमाल नाभाजीकृत सटीक [छंदबद्ध]....	५-०

पुस्तक मिलनेका ठिकाना--

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना-खेतवाड़ी--मुंबई.

श्रीः ।

अथ शील-सावित्री नाटक।

(स्थान रंग भूमि)

(नांदी मंगलपाठ करता हुआ आता है)

नांदी- (श्लोक)

शिवं शुद्ध बुद्धं परं विश्वनाथं न देवो न बंधुर्न कर्ता
न कर्म्म॥न चांगं न संगो न चेच्छा न काम चिदानंद
रूपं नमो वीतरागम् ॥ १ ॥

(सूत्रधार आता है)

सू०- (आपही आप)अहा ! हा !! हा !!! आज यह क्या हो रहा है यह सभा क्यों रची गई है बिछौना तो ऐसा उत्तम किया है मानों आकाश तारागणों समेत ही यहां उठा कर रख दिया है, वाह ! वाह !! क्या अच्छी शोभाहै, बीचका फुल चंद्रमा को क्या स्पष्ट दरशा रहा है अरे ! यहां तो बहुतसे सज्जन मनुष्य और गुण-वान् पंडित भी विराजे हुए हैं, इस सभाको तो अपनी नटीको भी दिखलाना चाहिये, (नैपथ्यकी ओर ऊँचे स्वरसे) प्रिये ! यहां आओ देखो तो यह क्या सुन्दर रचना है-

(नैपथ्य में)

(हे प्राणनाथ ! आतीहूं)

सू०- (बड़े काँचकी ओर देखकर आपही आप) अरे यहां तो एक सभा औरभी है मैं उसमें जाकर छिप जाऊं देखूं मेरी प्रिया क्या करती है (आगे बढ़ता हुआ काँचसे टक्कर खाता है)यह क्या (शिर खुजलाता है)-

(नटी आती है)

न०–हे प्रियवर ! यह क्या करते हो–

सू०–सत्य है जब कोई किसीको बिना अपराध दुःख देना चाहता है तो वह आपही दण्ड पाता है–

न०–यह तो हुई आपने इस समय इस दासीको क्यों याद किया, क्या आज्ञा है, आज तो यहां बड़ी चमत्कारी सी हो रही है–

सू०–बस तो और कामही क्या था, यही चमत्कारी देखने कोहीतो बुलाई थीं, और एक बातभी कहनीहै–

न०–वह क्या–

सू०–इस समय इस उत्तम सभाको देख कर मेरा जी चाहता है कि कुछ अपने गुणका भी इन सज्जनोंके सामने प्रकाश करूं–

न०–हे नाथ यदि मैं इस समय इस विषय के लिये उपस्थित नहीं हूं और मेरा चित्तभी फूलोंके हार बनाने मेंलगाथा वह अधूरा छोड़आई हूं पर आपकी आज्ञाका प्रतिपालन करना मेरा परम धर्महै–जो स्त्रियां अपने पतिके विरुद्ध कार्य करती हैं उनके दुःखकी सीमा नहीं यह कौनबड़ी बात है कोईनाटक दिखाकर सज्जनोंके मनको हर्षितकीजिये–

सू०–हे प्राणप्रिये ! यदि तुम्हारे हारके रहजानेका मुझे बड़ाशोक है पर यह सज्जन पुरुष तुम्हारेही गुणग्राहक होरहे हैं तुमको मेरी आज्ञाके प्रतिपालन करनेका बड़ा ध्यान है इसका मैं–धन्यवाद करता हूं, मैं बड़े शोचमें हूं कि कौनसा नाटक खेलाजाय कि जिससे यह लोग तुम्हारी प्रशंसा करें–

न०-नाटकोंकी भी कोई कमी है आजकल तो सहस्रों हैं-

सू०-यह जो सज्जन मनुष्य इस समय सभामें बैठे हैं बुद्धिमान् और पंडितहैं यह ऐसे नहीं हैं कि गोपी-चंदभरथरी अथवा लैलैमजनूंआदि नाटकोंसे प्रसन्न हों, अभी यह लोग आपसमें वार्तालाप कर रहे थे कि स्त्रियोंको विद्या पढ़ानेका उपदेश देनेवाले तो इस भारतवर्षमें बहुतहैं परंतु उनकी शिक्षाके योग्यपुस्तकें बहुत कम हैं इसलिये इनको एक ऐसा नाटक दिखला-याजाय कि जिसमें स्त्री शिक्षा भरी पड़ीहो,और इनके चित्त भी प्रफुल्लित होजायँ।

न०-वाह! वाह!! इतनी देरसे आप इसी चिंता में थे, कलही मैंने एकनाटक शीलसावित्री नामक पढ़ाहै जो आज कलकी स्त्रियोंको शिक्षार्थ बहुतही उत्तम है, मुझे वह बड़ा प्रिय मालूम हुआ उसीको दिखला कर सज्जनों को प्रसन्न कीजिये-

सू०-अहा! हा!! हा!!! क्या अच्छी याद दिलायी मुझे तो, यह स्वप्नमें भी न सूझती, कभी लोकटी भी मृगसे आगे निकल जातीहै-चलौ सज्जित हो आवं।

(दोनों जातेहैं)

अंक १.

प्रथम गर्भांक।

(स्थान राज्यभवन)

(महाराज अश्वपती आते हैं)

अश्वपती–(आपही आप) आज सावित्रीने देवताओंका ध्यान किया है और विधिपूर्वक हवन करके देवताओं और ब्राह्मणोंसे स्वस्ति वाचन कराया है उन ब्राह्मणोंकी प्रसाद पूर्वक दी हुई पुष्पमालाको लेकर अभी क्यों नहीं आई विलम्ब बहुत हुआ–

(नैपथ्यमें)

(महाराज पिताजी मैं आतीहूं)

(सावित्री माला हाथमें लिये हुए आती है)

अ०–(सावित्रीकी ओर देखकर आपही आप) अब तो यह कन्या विवाहके योग्य हुई, जैसे रात्रीविना चंद्रमाके शोभा नहीं देती ऐसेही तरुण स्त्री भी विना पुरुषके शोभायमान नहीं होती योग्य अवस्थामें कन्याका विवाह कर देनाही उचित है काल व्यतीत होनेपर कामका रस काल पीता है–

सावित्री–(पिताके दोनों चरणोंको नमस्कार करके) महाराज यह पुष्पमाला लीजिये–

अ०–(माला लेकर) अच्छा पुत्री जाओ अपना नित्य कार्य करो–

सा०–जो आज्ञा महाराजकी (जातीहै)

(स्थान रनवास)

(महारानी मालवी विराजी हुई हैं)

(महाराज अश्वपती आते हैं)

मा०–(महाराजको देखकर उठ खड़ी होती हैं आसन बिछा कर) विराजिये, विराजिये–

अ०–मुझे तुमसे कुछ सम्मति लेनीहै–

मा०–श्री महाराज तो आपही बुद्धिके सागर हैं मुझ दासीको क्यों लज्जित करते हैं–

एक सहेली–इस में क्या सन्देह है–

अ०–यह तो सही परंतु नीति शास्त्रमें ऐसा लेखहै कि कोई गृहकार्य पुरुष अपनी स्त्री की सम्मति विना न करे–

मा०–महाराज स्त्रीतो बहुधा अल्प बुद्धि होती हैं–

अ०–नहीं नहीं राज्य कार्य आदिके प्रबंधमें पुरुषकी और गृहकार्य के प्रबंधमें बहुधा स्त्रीकी बुद्धि तीव्र होती है–

दूसरी सहेली–(मालवीसे कानमें) महारानीजू ! आज महाराज का मुख कुछ मलीन सा दीखपड़ताहै न जाने क्या चिंताहै–

मा०–(सहेली के कानमें) यही मैं विचार रही हूं (प्रगट अश्वपतीसे) महाराज ! अपने मुख पंकज से क्या आज्ञा करते हैं यह दासी स्वल्प बुद्ध्यनुसार उत्तर देगी–

अ०–आज जब सावित्री मुझे पुष्पमाला देनेगई तो एक भ्रांति मेरे मनमें उस कन्याको देखकर उत्पन्न हुई•

मा०–वह क्या महाराज–

अ०–देखो हमारी कन्या सावित्री इस भवनमें जल बिच कमलके समान बढ़तीहै और अब पूर्ण अवस्था को प्राप्त होचुकी है इस लिये हम को उचित है कि अब शीघ्रही उस के विवाह का प्रयत्न करें–

मा०–महाराज आप सत्य कहते हैं कन्या का योग्य अवस्था में विना विवाहके रहना और विवाह होने पर

भी बहुत दिवस पिताके गृहमें वास करना उसके माता पिताओंको कलंकित करदेताहै अब इसके विवाहमें शीघ्रताही उचितहै (आँखोंमें आंशूडबडबाकर) परंतु मेरा जीवन दुर्लभ होजायगा और इस भवनमें अँधेरा छाजायगा–

अ०–हां जिसके गृहमें पुत्रीका जन्महुआ उसको तो कभी न कभी यह दिवस देखनाही पड़ताहै, परंतु इस बातका बहुत शोच करना न चाहिये पुत्रसे एक घर और पुत्रीसे दो घर शोभा पातेहैं–

मा०–मेरा चित्ततो अभीसे चंचल होताहै--

एक सहेली--धैर्यधरो ! धैर्यधरो!!

दूसरी सहेली–सावधान होकर महाराजकी बातका उत्तर दो देखो वे अपना राज्यकार्य छोड़कर तुम्हारे पास विराजे हुएहैं–

अ०–अब शोचको छोड़ो चिंतामें कार्यकी सिद्धि नहीं होती यह तो जो कुछ हमारी प्रारब्धमेंहै दुख और सुख भोगनाही पड़ैगा–

मा०–महाराज बड़े जप तप और यज्ञ आदिके प्रतापसे तो ब्रह्माजीकी पुत्रीने हमको इस बृद्धावस्थामें यह एक कन्यादी अब यहभी मुझसे पृथक् होतीहै–

अ०–प्रिये! अब इन बातोंको छोड़ो और धैर्य धर कर कोई योग्यवर बतलाओ इस क्षेत्रमें तो कोई राजा अथवा महाराजाका पुत्र ऐसा रूपवान् और गुण निधान जान नहीं पड़ता कि जो इसके योग्यहो और इसका अद्भुतरुप सुनकर कोई याचनाभी नहीं करता सावित्रीके गुण और रूपकी प्रशंसा सारे देशमें प्रख्यात हो रहीहै इसी हेतुसे कोई राजपुत्र इस चंद्रमुखीसे

विवाह करनेको उद्यत नहीं होता सर्व लोग इस ज्योतिसे अभिभूत हो रहेहैं और नीतिमें ऐसा भी लेखहै कि स्त्रीके पिता भ्राताओंके गृहमें बहुत दिवस तक रहना योग्य नहीं बहुधा ऐसा होनेसे कीर्ति शील स्वभाव और धर्म इनतीनोंका नाश होताहै किसी कविका वचनभीहै ॥

दो०–क्रियाहीन सब ज्ञानहत नरहत मूढ़गवाँर।
नायक विनु सेना जुहत नारी विनु भर्तार ॥

यदि बहुतसे राजकुमार अति रूपवान् अच्छे कुल वाले पढ़े लिखे और धनाढ्यभी हैं परंतु किसी कविने कहाहै ॥

दो०–अगुणी रूप भयो सुहत हत कुशील कुलशुद्ध।
विना सिद्ध विद्या जुहत भोग विना धनलब्ध ॥

मा०–यहतो सत्य है–

दो०–गुणहै भूषण रूपको कुलको शील सँयोग।
विद्या भूषण सिद्धिहै धनको भूषणभोग ॥

इसके योग्य वर मिलै कहांसे, क्या दीपक दिवाकरके सन्मुख आकर अपना मान भंग कराना चाहता है इससे तो यही उचितहै कि सावित्रीसेही कह दिया जावे वह अपने योग्य वर आप ढूंढ़ले–

अ०–(सहेलियोंकी ओर) क्यों मैंने पहिलेही कहाथा, क्या अच्छी कहीहै तुममेंसे एकजाकर सावित्रीको बुलालाओ–

एक सहेली–जो आज्ञा (जाती है)

मा०–हे प्राणेश ! आज आपने यह क्या विचारा है, एक तो हमको ईश्वरने अभागी किया कि कोई पुत्र हमारे नहीं है और इस इकलौती बेटीको भी आप मुझसे

अलग किया चाहतेहैं,भला आप यह तो कहिये कि मेरे प्राणोंकी रक्षा करनेवाला कौन रहेगा-

दूसरी सहेली-महारानी जू ! यह क्या कहतीहो प्राणोंकी रक्षा करने वाले आपके शिरपर बहुत बड़ेहैं आपका ध्यान किधरहै-

अ०-इस संसारमें यही बड़े आश्चर्यकी बातहै कि यदि पुत्रकी आयु ज्योंज्यों वह बड़ा होताहै घटती जातीहै-परंतु मातापिताओं को उसके बढ़नेहीमें सुख प्राप्तहोता है और कन्याके जन्ममें पहिले और पीछे दोनोंमें दुःख देखना पड़ताहै-

(सावित्री आकर माताकी गोदमें बैठ जाती है)

सा०-(माताके मुखकी ओर देखकर) हैं ! माताजी यह क्या करती हो ? आँखोंमें आँशू क्यों भरलाई-

मा०- (सावित्रीको छातीसे लगाकर) हे बेटी ! अरी बेटी !! क्या तू अपनी माताके पाससे जाना चाहती है-

सा०-(अश्वपतीसे) पिताजी ! आज माताजीकी यह दशा क्यों है मैं तो कहीं नहीं जाती-

(नैपथ्यमें)

सावित्री ! सावित्री !! हे सखी सावित्री ! कहां है मैं तो बांटिकासे पुष्प लेआई-

सा०-(ऊँचे स्वरसे) हे सखी ! यहां आ देख आज माताजी कैसे शोकमें हैं।

(सुलोचना आती है)

सु०-क्या है सखी, आज यह क्या है महाराज उदासीनसे क्यों बैठे हैं,महारानीजीकी आँखोंसे पानी क्यों बहता है हें ! हें ! धीर्यधर तूभी क्यों रोये देती है कुछ

कहलो सही, आज है क्या (रानीकी सहेलियोंकी ओर) कृपा करके तुमहीं कुछ बताओ–

एकसहेली–आज तुम्हारी सखी सावित्रीके विवाह की चर्चा हुई है–

सु०–बस तो मैं जान गई महारानीजी को यही शोच है कि मुझसे सावित्री अलग हुई और महाराजभी इसी चिंतामें बैठे हैं–

दूसरी सहेली–हां यही बात है–

अ०–अब शोच करना व्यर्थ है यह तो एक दिन होनाहै सो होकर रहैगा अपनी पुत्रीको आज्ञा दो–

मा०–हे प्राणेश ! मेरा चित्त ठिकाने नहीं है आपही कहिये--

सा०–(आपही आप) देखा चाहिये मेरे भाग्यमें क्या है पिताजीके मुखसे क्या वचन निकलताहै–

अ०–(सावित्रीसे) बेटी इस समय मेरे चित्तमें एक भ्रांति उपजीहै तू कान लगाकर सुन–

सा०–आज्ञा पिताजी–

अ०–धर्मशास्त्र में ऐसा लेख है कि यदि पिता अपनी कन्या के पूर्ण अवस्था पर पहुंचे पीछे उस का विवाह न करे तो पिताको दूषण है और जो पुत्र अपनी माताका विधवा अवस्थामें पालन पोषणादि न करे तो वह भी निन्दित है, तेरे हृदय को सद्गुण रूपी चंद्रमा से प्रकाशमान देख कर किसी राजा अथवा महाराजा की सामर्थ्य नहीं पड़ती कि तेरे विवाहकी याचना करै, हे पुत्री ! अब तेरे विवाह का काल है इसलिये मैं तुझे आज्ञा देताहूं कि तू अपने योग्य गुणवान्

और रूपवान् वर आपही ढूंढ़ले क्योंकि शास्त्रमें यह भी आज्ञा है-

सा०-माता पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना, चाहे वह किसी विषय में हो, संतान को इस भव और परभव दोनों में लज्जा को प्राप्त करता है क्योंकि संतान के देह कर्ता यही दो पुरुष हैं (शिरनीचा करके) पिता जी ! आपकी आज्ञा के प्रतिपालन करने में अपना परम धर्म जानती हूं-

मा०-बेटी क्या कहा हाय, हाय, यह तो अभी से विमुख होचली-

अ०-इतनी अधीर्य न हो, अभीकहीं नहीं जाती, फिर एक बेर मेरी आज्ञा लेने आवेगी-

मा०-मेरा कलेजा तो अभीसे फटा जाता है-

अ०-यह समय शोक का नहींहै, अपनी बेटी को आशीर्वाददो कि उसका कार्य सुफल हो-

मा०-महाराज! क्या सावित्री अकेली ही जाती है-

अ०-नहीं, नहीं, रक्षाके निमित्त इस के साथ कुछ सैन्य भी जायगी-

सा०-पिताजी सुलोचनाको मेरे साथ अवश्य भेजियेगा-

अ०-हां हां ठीक भी तो है (सुलोचनासे) तेरी और सावित्रीकी बाल्यावस्थासे ही परस्पर प्रीतिहै इसने आजदिन पर्य्यंत तुझे अपनी बहनके सदृश जानाहै, अब तुझे भी इसके कार्यमें सहायता करनी उचितहै-

सु०-मैं अपनी प्यारी सखीसे कब अलग रहना चाहतीहूं और विशेष कर ऐसे समयमें-

अ०-(नैपथ्यकी ओर) कोई है-

(नैपथ्यमें)

(श्रीमहाराज हाजिरहूं)

(द्वारपाल आता है)

द्वा०—(हाथजोड़कर) क्या आज्ञाहै—

अ०—विदूषकको राज्य दरबार में अभी बुलालाओ—

द्वा०—जो आज्ञा श्रीमहाराज (जाताहै)

अ०—(मालवीसे) अबमैं भी बाहरजाऊं चिंता मत-करो धीर्य धरो सब कार्य शुभ होंगे (जाताहै)

(स्थान विदूषकका घर)

(विदूषकबैठाहुआहै)

वि०—(आपही आप) मनुष्यको जो सुख बाल्या-वस्थामें मिलताहै वह कभी नहीं, कुछ किसी बातकी चिंता ही नहीं रहती, भूख लगी जब रोदिये दूध मिल ही जाताहै, इससे कुछ कम युवावस्थाहै यदि पाल-न पोषणादिकी चिंता पीछे लगजातीहै परंतु अपना शरीरतो अपने वशमें रहताहै (खांसी उठतीहै) हायरे बुढ़ापे अब इससे भी अधिक कुछ और दुख होनाहै क्या, मुंहमें दांत रहे नैं पेटमें आंतरहीं आँखोंसे सूझनहीं पड़ता (किवाडोंका खटखटाहट होताहै) अरे कौनहैरे कौनहै (फिर खटखटाहट होताहै) अरे कौन है, कौन है, बोलता क्यों नहीं मुंहसे मुछीका लगा हुआहै क्या?

(बाहरसे शब्द होताहै)

अजी महाराज किवाड़खोलिये मैंहूं मैं—

वि०—हायरे! यह क्या आपत्तिहै इस अवस्थामेंभी कोई चैन नहीं लेने देताहै, यहशब्द तो द्वारपालकासा है, अबभी पापीजन पिण्ड नहीं छोड़ते (ऊंचे स्वरसे) आताहूं, भाई आताहूं (उठकर और किवाड़ खोलकर) क्यों क्यों आज इस समय कैसे आये कुशलतो है—

द्वारपाल-सब कुशलहै महाराजकी दयासे, नरेशने आपको याद कियाहै, बेग पधारिये-

वि०-यह तो मैं पहलेही जान गयाथा कि यमराजके दूत आन पहुंचे बिना लेजाये काहेको मानेंगे अभी तो महाराजके संगसे शिकार खेलता आयाहूं अब क्या महाराज मेरा प्राण लेंगे--

द्वा०-महाराज ! आप वेग पधारिये नहीं मेरी और आप दोनोंकी कुदशा आजावेगी-

वि०-ले भाई चलताहूं, (लाठी लेकर) चलो भइये " अभाग्याने टांटिनां भाग्यानी जिह्वा "

दो०-भाग्यवलीकी प्रेरणा अनभागी के पाय।
हले आंख बड़भागसों नवै दीन शिरनाय॥

(दोनों जातेहैं)

(स्थान राज्यभवन)

(महाराज अश्वपती विराजे हुए हैं)

अ०-(आपही आप) द्वारपालने बड़ा विलम्ब लगाया, उसकाभी अपराध नहींहै बिचारा विदूषक बुड्ढा आदमीहै, लाठी टेकता २ आता होगा-

(आगे आगे विदूषक और पीछे पीछे द्वारपाल आतेहैं)

द्वा०-इधर कहां जातेहौजी, वह देखो महाराज साम्हने विराजेहैं (राजासे) महाराजकी जयहो विदूषक हाजिरहै-

वि०-मेरे हाथ में तो लाठीहै, बचनसेही महाराजको प्रणाम करताहूं-

अ०-आइये मंत्री महाशय! आइये, क्या दीख नहीं पड़ता, आंखोंपर जाला छागया है इधर आइये, सत्य है बुढापा सर्व अंग भंग करदेताहै, क्या नेत्रोंकी ज्योति कुछ मन्द होगई है-

वि०–महाराजका दर्शन पाये–

अ०–अब तो आपके हाथ पांवभी हिलने लगे हैं–

वि०–महाराजकी दया है तो यहभी न रहैंगे–

अ०–लो आजसे हम प्रतिज्ञा करते हैं कि, तुम्हैं अहेरमें साथ न लेजाया करेंगे–

वि०–(आपही आप) चलौ भला पिण्ड छूटा (प्रगट) महाराजका अखंड प्रतापहो, महाराजकी बड़ी आयुर्बल हो " अंधेको क्या चाहिये दो आंख "

अ०–अहो देशाधिकारी ! हमें आज तुमसे एक विषयमें सम्मति करनी है (आपही आप) बुड्ढेसे पूछूँ तो देखें क्या कहता है–

वि०–(पगड़ी ऊंची करके) कहिये, कहिये–

अ०–हमने अपनी पुत्री सावित्रीके निमित्त सब जगह वरदेखा, परंतु कहीं योग्य वर नहीं मिलता–

वि०–वाह बस यही बातथी, इसी लिये आप आज अनमनेसे बैठे हैं–

अ०–अच्छा तो आपही उपकारी बनिये–

वि०–निर्मल नदी सामुद्रक मार्ग आपही भली भांति ढूंढ़लेती है–

अ०–(आपही आप) मंत्रीभी यही सम्मति देताहै (प्रगट) अच्छा तो सावित्रीके साथ कुछ सैना रक्षाके निमित्त करदीजिये–

वि०–जो आज्ञा महाराजकी (जाता है)

(स्थान रनवास)

मा०–(सावित्रीसे) बेटी मुझसे अलग रहना तुझमें कैसे सम्भव होगा, बेटी ! अपने पतिके घर जाकर अपनी माताको भूल मत जाना–

(महाराज अश्वपती आतेहैं)

अ०--(सावित्रीसे) पुत्रीजाओ सब प्रबंध होगयाहै--

(द्वारपाल आताहै)

द्वा०--महाराजकी सदा जय जयकारहो द्वार पर रथ हाजिरहै--

अ०--अच्छा आते हैं बाहरचलो--

द्वा०--जो आज्ञामहाराज (जाताहै)

मा०--(आँशू बहाकर सावित्रीसे) बेटी वेग दर्शन देना, अभी निस्पृहता न करलेना--

अ०--यह समय रोनेका नहींहै अपनी बेटीको आशीर्वाददो, (रथके पास जातेहैं)

मा०--(आंशूरोंककर) प्रथम आपही दीजिये--

अ०--बहुत अच्छा (सावित्रीसे) बेटी !

सो०--सुफल होय तव काम लौटौ घरको बेगही।
लेकर हरको नाम रथ चढ़ि कीजै यातरा॥

मा०--हेमम लालनी !

सो०--मम दुख देवँन हेत बेटी तुम रथ चढ़ चलीं।
राखहियेमें चेत कार्य सफल कर आपनो॥

सा०--माता पिताओंके बचन शिरमाथे--

(दोनोके चरणोंको नमस्कार करके रथपर बैठकर सारथीसे) चलो--

(सब जातेहैं)

द्वितीय गर्भांक।

(स्थान एक बनमें गौतम ऋषिका आश्रम)

(गौतम और उनका शिष्य आतेहैं)

गौ०--देखो भाई कैसा समय आगयाहै इस सृष्टिमें लोभ कैसा फैलाहै, पशुपक्षी आदि और जंगली जीवजंतु यदि मांस अहारीहैं और बहुतसे ऐसे हैं कि जो सिवाय मांस के और कुछ नहीं खाते परंतु अपने सजातियोंको कोई

नहीं सताता मनुष्यको इनके बराबरभी बुद्धि नहीं, लोभमें आकर और विशेष कर मान रक्षाके निमित्त अपने ही सजातियोंसे घात करते हैं नहीं तो उनको भांति भांतिके क्लेश देनेमेंही अपना परम धर्म समझते हैं, देखो बिचारे द्युमत्सेनकी क्या दशा हो रही है विपदा और बुढ़ापेका मारा एक कुटीमें पड़ा रहता है–

शिष्य--हां महाराज उसके पुत्रको देखकर तो मुझे बड़ाही त्रास आताहै जो अवस्था उसके विवाह उत्सव कीथी वह इस बनके कांटोंमें व्यतीत होरही है जो कुछ मनुष्यपर आपड़ती है वही सहता है–

(सावित्री और सुलोचना अपने रथपर चढ़ी साथियों सहित आती हैं)

गौ०--अरे ! देखो तो उस ओर यह भीड़ भाड़ कैसी चली आती है, रथमें देखना चाहिये कौन हैं, कहांके महाराजा हैं, किस कार्यको कहां जाते हैं–

शि०–(कुछ आगे बढ़कर और रथको देखकर) इसमें तो दो स्त्रियां दिखलाई देती हैं–

गौ०--(भली भांति देखकर)अहा ! हा !! हा !!! बिधाताने कैसी कैसी सुन्दर प्रतिमा गढ़कर इस पृथ्वी पर रक्खी हैं बहुतसे मनुष्य अपनी थोड़ीसी सुन्दरताई और ऐश्वर्य पर बड़ा अभिमान रखतेहैं परंतु उस सर्व शक्तिमान् जगदीश्वरने सबका अभिमान भंग करनेके लिये एकसे एकको अधिक बनाया है, यदि इस मृगनैनीका विवाह सत्यवान् द्युमत्सेनके पुत्रके साथ होतो क्याही उत्तम है, पूंछना तो चाहिये यह कौन राज कुल संभवा है–

शिष्य०--चलिये तो महाराज–

दोनों०–(रथके निकटजाकर) राजकुमारीका अखंड प्रतापहो–

सावित्री-(पीछे देख कर सारथी से) घोड़ों की बाग खींचो, महात्माओं से भेंट कर लूं-

सारथी-जो आज्ञा (बाग खींचता है)-

सा०-(रथसे उतरती हुई सुलोचनासे) सखी तू भी आ (उतर कर और ऋषि को हाथ जोड़ कर, प्रणाम करके) महात्माओं को रथ परसे दण्डवत् करना योग्य नहीं समझा, अपराध क्षमा कीजिये और हमारी दण्डवत् लीजिये-

गौतम-दीर्घायु हो पुत्री-

शिष्य-महाराज के वचन सत्य हों-

गौ०-पुत्री आपका पिता कौन देशकी रक्षा करता है यहां किस कारण आना हुआ-

सु०-महाराज! यह हमारी सहेली सावित्री नाम मद्रदेशके राजा अश्वपती की कन्या है, अपने पिताकी आज्ञानुसार स्वयम् बर ढूंढने निकली है सर्व गुण सम्पन्न सुशील धार्म्मिक और रूपमें अपनेसमान वर प्राप्तकी इच्छा है-

शिष्य-(हौले गौतमसे) यह अवसर अच्छा है और यह सब गुणभी उसमें हैं कुछ उपयोग करिये न-

गौतम-(हौले शिष्यसे) यह हमारा धर्म नहीं है, मार्ग बतलाये देते हैं यदि ईश्वर इच्छा है तो ठिकानेपर पहुँच जायगी (प्रगट सावित्रीसे) पुत्री तू अपना मनोर्थ शीघ्र पावेगी यही हमारा अंतःकरणसे आशीर्वाद है " जिन ढूंढ़ा तिनपाइयाँ गहरे पानी पैठ " (मार्ग दिखाकर) इसी ओर चली जाना-

सा०-महात्माओंका वचन सत्यहो-

सु०-सत्यहो-

दोनों-अब आज्ञादीजिये (दण्डवत करती हैं) (रथपर बैठकर) अब आपपधारें-

गौ०-(शिष्यसे) चलौ भाई-

(दोनों जाते हैं)

सा०-(सारथीसे) रथको हांको--

सारथी--जो आज्ञा (हांकताहै)

(स्थानवन)

सा०--(सुलोचनासे) यह कैसा रमणीक स्थानहै देखो वह गुलाब और केतकीके पुष्प सूर्यके तेजसे मुरझाकर पृथ्वीकी ओर कैसे झुकेहैं मामों उससे जलकी याचना कर रहेहैं, नदीसे तरंगें ऊपरको कैसी उठ रहीहैं मानों इनको भानु केसे बुलावा आयाहै और जलके ऊपर पशु पक्षी आदि उड़ते हुए कैसे शोभायमान दीख पड़तेहैं अब सूर्यभी बहुत चढ़ आयाहै सारथीसे कहौ रथ को रोके और घोड़ोंको कुछ विश्राम लेनेदे इतनी वेरमें हम तुम इस बनकी विचित्रता देख आवें--

सु०-(सारथीसे) घोडोंको कुछ विश्राम लेने दो बहुत थके होंगे--

सारथी-- (बाग खींचताहै.) आज बहुत चले आये-

सा०-(सारथीसे) देखो सूर्य्यकी तापमें बडे वेगसे चले आनेके कारण पसीनेसे घोडे कैसे न्हागयेहैं मानों अभी नदीमें स्नान करके निकलेहैं इस वृक्षकी छायामें इनके पसेव सुखालो और ठंढा करलो (सुलोचनासे) आओ सखी इस बनको देखें कैसा रमणीयहै ॥

सु०-चलौ (एक ओरको जाती हुई)

सा०-देख इस पृथ्वीपर कैसे कैसे वृक्ष और पर्व्वत आदिक स्थितहैं कि जिनकी ऊँचाई देखनेसे माथा घूमताहै

इन पर्व्वतोंपर जो पेड़ छोटे पौदोंके समान दिखाई देतेहैं वे बड़े वृक्षहैं और जो पत्थरोंके टुकडे कंकडोंकी समान दृष्टिमें आतेहैं वे बडी बड़ी शिलायेहैं ज्यों ज्यों हम उनके निकट जातेहैं वे बड़े बड़े दिखाई देतेहैं, यहां कैसे घमसान वृक्षहैं कि कहींसेभी आकाश दीख नहीं पडता, यह वृक्ष फल पानेसे भूमिकी ओर कैसे झुकेहैं मानों हमको प्रणाम करतेहैं, चलो उन्हींके निकट चलैं (निकट गई)--

सु०--बहुत दूर आनेसे तू अवश्य थक गई होगी, अब इस वृक्षके तले बैठकर थोड़ासा विश्रामलेलें--

सा०--मेरा भी यही जी चाहताहै--

सु०--अच्छा तो यहां बैठ, मैं कुछ पुष्प तोड़ लाऊं (पुष्प तोड़ती हुई जातीहै आपही आप) सत्य है प्रत्येक इन्द्री जब तक उसे उसका विषय नहीं मिलता संतुष्ट नहीं होती-- (एकचित्रपट पड़ा देखकर) हैं ! इस बनमें यह प्रतिबिंब किसका है (उठाकर) यह तो किसी राजर्षीका पुत्र जान पडताहै (सावित्रीसे) टुक इधरतो देख यहक्याहै देख इसकी चितवन कैसी सुन्दरहै--

सा०--(चित्र देखकर और विह्वलसी होकर) हे सुलोचने ! इस समय मेरा मन अधीर्य होगयाहै, बडी बेकली होरही है, जिसका यह चित्रपट है उसे ढूंढ़ला, नहीं तो मेरे प्राण त्याग होंगे, यही मेरा प्राणपति होगा--

सु०--(आपही आप) चित्र दिखाकर क्यों मैंने अपने आप विषबोया (प्रगट) साबित्री तुझको क्या होगया देख तेरा चंद्रमा सा मुख पीला पड़ा जाता है, अंग शिथिल होता जाता है, सैनाके लोगभी यहांसे दूर हैं अब क्या करूं और किससे कहूं हा शोक ! मैं तुझे

यहां क्यों लाई और लाई भी तो चित्रपट क्यों दिखाया "अब पछताये होत कह चिडिया चुग गईं खेत" सखी ! अपने शरीरको सँभाल देखतेरी क्या दशा हुई जातीहै--

सा०–तू मुझसे अधिक बातें-बनाकर समयनष्ट न कर, यदि होसके तो औषधिला जिससे चित्त स्थिर हो और रोग घटै (चित्रपटको देखती हुई) हे प्राण-प्यारे ! तू किस वंशकाभूषण है, वह कौनसी सभागी नगरी है कि जिस पर तुझ सरीखा भूप रक्षा करताहै, हे प्रियवर ! तू कहां है, सुलोचने ! देख, जीर्ण हो जाने से इस चित्र में जो दो छिद्र कानकीलोरोंके पास होगये हैं वे कैसी शोभा देते हैं मानों दोनों कानोंमें मोती पड़े हैं–

सु०–हे सावित्री ! इतनी व्याकुल मतहो वह देख उन वृक्षोंमें एक मनुष्य लकड़ी काट रहा है, जाकर मैं अभी पूछती हूं–

सा०–पूछनेसे क्या होगा, जो तेरी इच्छाहै तो जा–

सु०–तू यहीं बैठी रह मैं जातीहूं ला चित्रपट मुझेदे-

सा०–तूही मुझसे शत्रुता करती है भला इस प्राण-प्यारेको कि जिसका चितवनही मेरा जीवनमूल है तुझे कैसे देदूं (चित्रपट देखती हुई) महाराज ! उत्तर क्यों नहीं देते देखो आपसे मिलनेकी आशा कर मैं कसी अकुलाय रही हूं कुछ तो बोलो–

सु०–सखी ! यह चित्र है यह क्या उत्तर देगा-

सा०–हाय ! हाय ! तैंने यह क्या किया इस समय इस प्राणप्यारेको चित्र क्यों बतलाया, मैं तो साक्षात प्राणनाथ समझकर इसे अपनी प्रीति दिखा रही थी–

सु०–चल बावली बातें क्यों करती है, धीर्य धर और चित्रको मुझे दे जिससे कुछ उपाय करूं–

सा०–(ठंढी सांस लेकर चित्रपट देती हुई) तू जो कुछ करैगी मेरे लिये अच्छाही करैगी कृपा करके वेग आइयो और शुभ समाचार लाइयो–

सु०–(चित्र लेकर) अब मैं जातीहूं सावधान रहना (जाती है)

सा०–(आपही आप) मैं भी तो देखूं सुलोचना क्या करती है (पीछे पीछे जाती है)

सु०–(लकड़ी काटते हुए मनुष्यको देखकर आपही आप) यह तो किसी बड़े तेजस्वीका पुत्र जान पड़ता है, इसका बकलेका वस्त्र ऐसा मालूम होताहै मानों सूर्यके सन्मुख कोई बदली आगईहै और चेष्टा भी इसकी प्रतापी मनुष्यकी सी जान पड़ती है न जानें इसका भाग्य ऐसा क्यों है, (पहले चित्रकी ओर पीछे उस मनुष्यकी ओर देखकर) अहा ! हा !! हा !!! हमारी सखीको जैसी पीर उठी वैसीही उसकी औषधि भी शीघ्रही मिलगई (ऊँचे स्वरसे) सावित्री ·वेगयहां आ, तेरे हृदयकी पंकज कलीको विकासित करनेके लिये सूर्यका प्रकाश हो गया है–

सा०–(पागलकी भांति) आई ! क्या प्यासी पृथ्वी की टेर मेघघटा ने सुनी ?

लकड़ी काटनेवाला–(चकितसा होकर) हां ! यह स्त्रियोंका सा बोल इस वनमें कहांसे सुन पड़ताहै (इधर उधर देखताहै)

सु०–(पहले चित्र और फिर लकड़ी काटते हुए मनुष्य को सावित्रीको दिखलाकर) देख तो सावित्री !

चित्रांकित प्यारा यही है-

सा०-(प्रसन्न मुख होकर) यहीहै ! यहीहै ! इसीने मेरा मन हराहै (दौडकर कुछ कहना चाहतीहै)-

सु०-सावधान, सखी-

सा०-हाय, मेरी बुद्धि इस समय कहां चली गई (फिर बेचैन होकर) हेप्यारे ! (मूर्छित हो जातीहै)

सु०-(नदीसे जल छिड़क कर) सचेत हो, सचेत हो, वनके कांटे तेरे कोमल अंगको वेधते हैं)

सा०-(सचेत होकर) अब मुझमें श्रद्धा नहीं है तूही जाकर प्राणप्यारे से विनयकर और उनको यहां बुला ला-

सु०-अच्छातो मैंहीं जातीहूं (निकट जाकर) हे सज्जन ! आप कौनहैं ? किस वंशके दिवाकर और किस कुलके भूषण हैं ? और इस दशामें कैसे पड़ेहैं, चितवनसे जाना जाताहै कि आप किसी बड़े प्रतापी राजाके पुत्र हैं-

लकड़िहारा-तुम मुझ अभागे से क्यों पूंछतीहो, तुम्हारा क्या प्रयोजन है (आपही आप) वह शब्द इन्हींकाथा-

सु०-प्रथम आप अपना पता और नांम बतलाइये, फिरमैंभी अपना प्रयोजन निवेदन करूंगी-

ल०-मेरा नाम और पता क्या पूछतीहो मैं एक अभागा पुरुषहूं द्रुमतसेन मेरे पिताका नाम है, शैल्या मेरी माताका नाम है मेरे माता पिता सदा सत्य बोलते हैं इस हेतुसे सत्यवान् मेरा नाम है पहिले शलवा देशमें रहताथा अबतो इस बनके एक आश्रममें अपने माता पिताकी सेवामें तत्पर रहताहूँ

विशेष व्यवस्था कहने योग्य नहीं " गतं न शोचामि कृतं न मन्ये "–

सु०–बस आपके कहनेकी आवश्यकता नहीं है–मैंने जानलिया कि आपके पिता उसी देशके महाराजथे उनका राज्य नष्ट होनेपर आप इस कष्टमें पडे हैं–

सत्यवान्–हांमेरापिता शलवा देशमेंही राज्य करता था वृद्धावस्थाके कारण उसके नेत्रोंकी ज्योति जाती रही, मेरी उन दिवसोंमें बाल्यावस्थाथी मंत्री लोग राज्यको दबा बैठे और हम तीनों प्राणियोंको निकाल दिया अब इस वनमें फल फूल और कंद मूल खाकर दिवस व्यतीत करते हैं और अपना जीवन निर्वाह करते हैं–

सु०–(आपही आप) हमारी सखीकी लगन तो श्रेष्ठ और योग्य मनुष्य सेही लगी है और क्यों नहो सरताकी लता आम्रको छोड़ दूसरे वृक्षसे काहेको लिपटेगी–

सा०–(आपही आप) अरेमन अब क्यों अधीर्य होता है तेरी तृषा बुझानेको अमृतकी घटा झुक रहीहैं–

स०–(सुलोचनासे) अबतुमभी अपना प्रयोजन कहो, (उसके हाथमें अपना चित्रपट देखकर) हे सौभाग्ये ! यह चित्रपट तुम्हें कहाँसे मिला यह तो मेरा है मार्गमें गिर पडाथा–

सु०–इसी चित्रपटने मुझे आपके दर्शनका लाभ दिया है (नैपथ्यकी ओर) सावित्री ! यहां आ ।

(नैपथ्यमें)

हे सुलोचने पहिले तूही आ–

स०–यह कोकिला किधर बोली ! आज वन देवी की क्या इच्छाहै?–

सु०—मैं अभी आतीहूं (सावित्रीके निकट ओटमें जाकर) क्या कहतीहै, सखी--

सा०--हे सुलोचने! तू मुझे बुलाती तो है परंतु यह मेरा अनादर न करें--

सु०--अरी तू बावरी हुईहै कहीं नीतिज्ञ मनुष्योंसे भी ऐसा हुआ है--

श्लो०—सूरश्च कृतविद्यश्च रूपवत्यश्चयाःस्त्रियः।
यत्रयत्र गमिष्यन्ति तत्र तत्र कृतादराः ॥

दोनों--(सत्यवानके निकट जातीहैं)

स०—(सावित्रीको आती हुई देखकर) गौर वर्ण, कमल नैन, चंद्र मुख, ताप हारिणी चितवन, लम्बे केश, मन्द मन्द मुस्कराती विद्युच्छटासी लतामें होकर यह कौन चली आतीहै ? इस के सौंदर्य पर यदि रति काम-देवकी स्त्रीको भी वार दिया जावे तो भी थोड़ा(मूर्च्छित होगिरता है)-

सु०-(सावित्रीसे) अब यह क्या दशा अनादर कर-नेकी है ? (आपही आप) दोनोंकी प्रीति तो परस्परहै (प्रगट) हेसज्जन ! चेत करो, चेत करो देखो हमारी सहेलीकी भी आपके प्रेममें क्या दशा है (आपही आप) स्त्रीको अग्नि और पुरुषको घृत समझना चाहिये घृत अग्निका साथ पाकर विना पिघले नहीं रहता और क्यों नहो सावित्रीका रूप क्या कुछ कम है और इस समय तो इसने ऐसा हाव भाव और कटाक्ष दिखला-याथा कि यदि शंभुनाथ भी जिन्होंने कामदेवको भस्म कियाथा यहां होते तो मूर्छित होकर गिरपड़ते मनुष्यकी कौन सामर्थ्य है--

स०-(सचेत होकर) प्रिये ! निकट आ और मेरे हृदय रूपी पंकज कलीको बिकसित करके कृतार्थ कर-

सा०-(लज्जित होकर) प्यारे (इतनी कहके ठिठक जातीहै)-

सु०-सखी ! किस शोचमें पड़ी है, निकट क्यों नहीं जाती-

सा०-(रिसही होकर) चल परे हट, ढिठाई मतकर-

स०-हे कमल नयनी ! तेरी मांगपर कि जो फूलों से भरीहै भ्रमर कैसे गुंजतेहैं मानों तुमसे कुछ याचना करने आये हैं इनका भी अनादर मत करो अपनी सखी पर इतना क्रोध न चाहिये (बांह पकडनेको हाथ बढ़ाताहै)

सा०-हे प्रियवर ! हे प्राणेश ! बांह न छुवो यह आश्रम ऋषियोंका है और कन्याका धर्महै कि बिना अपनी माता पिताकी आज्ञाके किसीको अपना पति न बनावे (आपही आप) यद्यपि प्रियतमने बकले का वस्त्र धारण कर रक्खा है तब भी इनका मुख कैसा दमक रहाहै मानों श्यामघटा में चंद्रमा आगयाहै--

स०-हे प्रतिष्ठते! कन्याका भी तो स्वयम्वर करना धर्म है (कुछ शोचकर हाथ हटा लेताहै) प्रीतिके वश होकर बहुधा मनुष्योंकी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, हे प्रिये ! मुझे बडा आश्चर्य है कि इस अवस्थामेंभी तुम्हारा ज्ञान वर्तमानहै, और तुमने मुझेभी सावधान करदिया इसका मैं धन्यवाद देताहूं, प्रथम शब्दसेही मेरा हृदय सन्तुष्ट हुआ अब कोई ऐसा उपाय बतलाओ कि जिससे तुम्हारे पिताजीकी आज्ञामिले वे कहाँ विराजते हैं-

सु०-यह बात तो कुछभी दुर्लभ नहीं हमारी सखी मद्रदेशके राजा अश्वपतीकी बेटी है अपने निमित्त वर नियत करनेमें स्वाधीन है और इसी कार्यके लिये यह यहांतक आईभी है, हमारे रथ आदिक इस बनके परले सिरेपर ठहरे हुए हैं हम इस वनकी विचित्रता देखने आईथीं शुभ प्रारब्धसे यहां आपसे भेट हुई और हमारा मनोरथ सिद्ध हुआ अब केवल मद्राधीश की आज्ञा लेनी है-

सा०-इतना अवकाश दीजिये कि,अपने पिताजीको लिवा लाऊं-

स०-हां ठीक है सन्तानकाभी यही धर्म है, मुझेभी तो आज्ञा लेनी है, परंतु शीघ्र आना (आपही आप) इसके मृदु वचन और प्रीतिमय सम्भाषण तो मेरे हृदय और मनको प्रीतिद्वारा इस भांति आकर्षण करता है कि, जैसे समुद्र वर्षाके जलको नदियोंकेद्वारा खींचता है (प्रगट) हे भवानी! हे प्रिये! इस बनमेंसे तू जिनकी वस्तु मँगनी लाई है वह तो देजा वे लोग तेरे बदले मुझे घेरेंगे-

सा०-(चकितसी होकर) हे प्राणेश! वृथा मुझे क्यों दण्ड देतेहो-

स०-वृथा कैसे-हरिणीके नेत्र, चीतेकी कमर, हस्ती की चाल और अनारके दांत तुम्हारे पास पराये हैं--

सा०-(मुसकराकर) तो अब आज्ञा दीजिये--

स०-प्राणप्यारी! कहां जाती हो दृग भरकर देख तो लेने दो-

सु०- हे सज्जन! क्या अबभी आपके नेत्र तृप्त नहीं हुए?

स०–क्या उदधि कभी नदीके जलसे तृप्त होता है ?

सा०–(जाना चाहती है, कुछ ठिठक कर) इस बनके छोडनेको तो जी नहीं चाहता--

स०--(सन्तुष्ट होकर) जाओ और वेग आना (कुछ शोचकर) मैं यह शब्द कहतातोहूं परंतु शोच इतना हीहै कि तुम्हारा गुलाब सा शरीर इन काँटोंमें कैसे चैन पावेगा--

सा०--फिर तो आपही उसका निवास स्थान देख लीजिये–

स०–यहां सभी प्रकारका दुःख रहैगा--

सा०–इसकी कौन शंकाहै बृक्ष फल फूल और पृथ्वी कंद मूल देहींगे, परंतु अब तो पीछेको पैर नहीं पड़ते–

स०–(आपही आप) इसका स्नेह तो अब मुझमें पूराहै और इसीके कहनेके अनुसार यहभी ठीकहै कि बिना उसके पिताकी आज्ञाके कन्याको स्पर्श न करना चाहिये, इससे तो अब यही उचितहै कि सावित्रीको भुलावा देकर कहीं छिप जाऊं (प्रगट) प्रिये देखो उस वेलमें कैसे सुन्दर पुष्प खिले हुएहैं (कुछ शोचकर आप ही आप) हैं ! मैं यह क्या करताहूं आशा देकर धोखा देना पुरुषत्व नहींहै–

सा०–अब तो मैं आपके विरहका दुःख नहीं सह सकूंगी, परंतु आशा बड़ी वस्तुहै आशाही प्रीति-निधिका अमृतहै–

सु०–दो०–अमृत धारा दो बहैं शनै शनै मिलिजाहि।
अरे वन्दनित शास्त्रके रोकतहै तू काहि ॥

स०–नहीं नहीं–

दो०--निर अपराधी बन्दहै भलो होन हम चाहिं।
शनै शनै धारा बहैं तोड़नसों मिलि जाहिं॥

सा०--(मुस्कराकर) यदि आपकी यही इच्छाहै तो मैं जातीहूं (दोनों एक ओरको जातीहैं)

स०--(आपही आप) हा! मैंने तो प्यारीका अंग भी भली भांति नहीं देखा, कौकिला केसे वचन सुननेके लिये केवल उसका मुखही तकता रहा मेरीदृष्टि तो उसके अधरोंकी छबि छोड़कर दूसरे अंगोंपर जाही नहीं सकी। अरे नेत्रो तुम दोही हुए, हे प्रिये! संयोग रसको त्याग मुझे इस वियोग रूपी विषमें डाल कहां चलीगई, अरे! वह मद्रदेश कितनी दूर है(चित्रको देखकर)क्या यह वही चित्रहै कि जिसे देखकर प्यारी सावित्री मोहित हुईथी? हाय मैंने आपही अपनेको कष्ट दिया मुझसे अधिक कौन मूर्ख होगा, चलूं अब अपने आश्रममें बैठूं(जाताहै)

(स्थान वहीवन)

(सावित्री और सुलोचना आतीहैं)

सा०--हे सुलोचने! (पागलकी भांति) प्रियतम मुझे छोड़ कहां चले गये तैंने उनको देखाहो तो बतलादो, अरी सखी! मुझे चैन नहीं पड़ता--

सु०--हैं! क्या! तू कैसी वार्ता करती है क्या पागल होगई है (आपही आप) इसकी यह क्या दशा होती जाती है अब इसीमें मिलकर इसे संतोष देना चाहिये (प्रगट) हे राज कुमार आपने हमारी सखीकी यह क्या दशा करदी है इससे कौनसा ऐसा अपराध बन पड़ा जो आप इस अखंड बनमें अकेली छोड चले गये--

सा०--(पागलकी भांति) हे नाथ! मुझ अबलाको क्यों इतना दुःख देतेहो मैंने तो अपना तन मन आपके

ऊपर न्योछावर कर दिया, अरे यहां तो कोई बटोही भी नहीं मिलता कि, जिससे आपके आश्रमका पता पूछूं, अरी सखी ! यहां तो कुछ पता नहीं चलता हे सुलोचने ! इस समय मेरा दुःख मैंही जानतीहूँ–

सु०–सत्यहै–किसी कविका वचन भी तो है–

दो०–विरह व्यथा कष्टित महा जानत हैं सबकोय।
जासों बिछुडत प्राणपति ताकी गति कह होय॥

सा०–सखी नदीकी ओर तो देख इस मछलीने पानीसे बाहर निकलतेही अपना प्राण त्याग दिया; मुझसे तो यही भलीहै, हे प्रियतम ! तुम्हारे विरह सागरकी लहर मेरे शरीररूपी घरको गिराना चाहतीहैं बेग आनकर रक्षा करो, सखी सुन–किसी कविने क्या कहाहै–

दो०–सुध आवे जब मित्रकी तब मन आवे चैन।
या सुखकी उपमा नहीं जो मुख देखे नैन॥

कुछ औरभी सुन–

दो०–मोहन मूरत सत्यवन मोतन रही समाय।
ज्यों मेंहदीके पातमें लाली लखी न जाय॥

सु०–हे सावित्री ! यदि सर्पके पास मणिहै परंतु वह उसका प्रकाश नहीं करता इसी प्रकार तुझेभी उचितहै, कि अपने प्यारेकी प्रीतिको प्रगट न करके मणि समान रक्खे, अंचलको सँभाल–

सा०–अरीबावरी तू किसे समझातीहै मेरा मनतो उसने हर लिया और अपना वास मेरे हृदयमें किया सत्यवानको देखे बिना अब मुझे चैन नहीं पड़ता मेरा हाथ मेरे बशमें नहीं कि अंचलको सँभालूं अब तो मैंने यही ठान लियाहै कि जिस तरह पानी दूधमें मिल जाताहै उसी तरह मैंभी उसमें मिलजाऊं, हे सुलोचने !

जैसे नौकापर बैठेहुए मनुष्यको सिवाय पानीके और कुछ दृष्टि नहीं आता ऐसेही मुझेभी सिवाय उस प्राणप्रियके कुछ दृष्टि में नहीं आता मेरी प्यारी सखी होकर तूभी प्रियतमसे मिलनेका कुछ उपाय नहीं करती-

सु०-किसी कविने सत्य कहाहै-

दो०-प्रेमछके मनको हटक रख न सकत कुललाज।
कमल नालके तंतुसों को बांधत गजराज॥

सन्तोष रख उपाय करनेवाले तेरे शिरपर बहुत बड़े हैं, अपने पिताके निकट चल-

सा०-आली मेरे पांवतो राज्यभवनकी ओर नहीं उठते (कुछ चलकर) जैसे नौका तो आगेको बढ़तीहै परंतु अपनी लहरोंको पीछेही छोड़ती जातीहै इसी भांति मेरा मनभी शरीरको छोड़ पीछे रहा जाताहै, परंतु तेरे कहनेका उल्लंघन करना नहीं चाहती, ले चल-

(दोनों जातीहैं)

अंक २

प्रथम गर्भांक ।

(स्थान राज्यभवन)

(महाराज अश्वपती आतेहैं)

अश्वपती-(आपही आप) सावित्रीको गये आज कई दिन व्यतीत होगये कुछ समाचार नहीं मिला न जाने कहां कहां भटकती फिरती होगी देखिये उसकी प्रारब्ध कहां टक्करखाती है सत्यहै अधिकाई सबकी दुःखदाई होती है, रूपवती स्त्रीकी हरकोई चाहना करके स्वयम् याचना करता है परंतु विशेष रूपसे सब भय मानते हैं और उस रूपवती कन्याके माता पिताओंको लेनेके देने पड़जाते हैं-

(विदूषक आता है)

वि०-(अश्वपतीका मुख मलीन देखकर आपही आप) आजईश्वर कुशल रक्खे, यह समय क्या यहां आनेका था परंतु अब क्या होताहै (प्रगट) महाराजका जयजयकार हो-

अ०-मित्र आज हमारा चित्त ठिकाने नहीं है बैठ जाओ कुछ शोचलें तो बांतकरैं-

वि०-(आपही आप) कहनेको तो सब लोग यही कहते हैं राज्य मिलगया फिर क्या कमी है परंतु वास्तवमें राजाको स्वप्नमें भी सुख नहीं मिलता इससे तो हम बाल कंगालही भलेहैं-

(द्वारपाल आताहै)

द्वा०-महाराजकी जयहो नारद मुनि आयेहैं, महाराजको आशीर्वाद देतेहैं-

अ०-वेग जाकर सत्कार पूर्वक आदर सहित लिवा

लाओ (आपही आप) नारदजी सारी पृथ्वीपर इधर उधर घूमा करतेहैं इनसेही सावित्रीके योग्य कोई बर पूछना चाहिये-

द्वा०-जो आज्ञा (जाताहै)

बि०-(नारदजीको दूरसे आतेहुए देखकर राजासे) महाराज ! यह भिक्षुक सा आपके सन्मुख कौन चला आताहै-

अ०-वाह मित्र ! क्या इनको तुम नहीं जानते ? यही तो महाराज नारदजीहैं-

वि०-यहीहैं ? मैंने तो कोई सपेरा जानाथा-

(नारदजी आतेहैं)

अ०-(खडा हो हाथजोडकर) महाराज ! दंडवत आइये ! आइये! धन्य भाग हमारे आज किधर भूलपडे-

नारद-नरेशका कल्याण हो हमैं और कामहीं क्या है इधर उधर भ्रमणही किया करतेहैं-

अ०-महात्माओंके वचन सत्यहों, क्यों नहो आप बडे परोपकारी हैं हम सरीके तुच्छ जीवोंको घर बैठे दर्शन देतेहैं (पैरोंपर गिरताहै)

ना०-(अश्वपतीको उठाकर) आप इतनी अधीनता क्यों करते हो आप राजा महाराजा हैं ऐसा करना योग्य नहीं-

दो०-सत्य प्रतिज्ञा आपकी परम धार्मिक ज्ञान ।
यगकारी धर्मात्मा सर्वोनीति निधान ॥

चौ०-तुम राजन बड महाप्रतापी ।
मेटत सकल प्रजाकी टापी ॥
तुम यश निधि विच डूबत अम्बर ।
चंद्र सूर्य तूंवाले भयकर ॥

अ०-हैं ! हैं ! महाराज आप अपने मुखारविंदसे यह क्या वचन निकालते हैं, मैं इतनी प्रशंसाके योग्य कहाहूं भला विराजिये तो सही यह बातें तो होतीही रहेंगी मुझे आपसे कुछ पूछना है-

ना०-(बैठते हैं)

(द्वारपाल आता है)

द्वा०-महाराजकी जयहो, सावित्री आती है-

अ०-आनेदो, अच्छे अवसरपर आई-

(सावित्री आती है)

सा०-(शिरनवाकर) पिताजीको प्रणाम (नारद-जीसे) महाराज दण्डवत् करती हूं-

अ०-आओ पुत्री अच्छे अवसरपर आई कह तेरा कार्य सिद्धि हुआ-

सा०-महाराजकी कृपा और महात्माओंके अनु-ग्रहसे क्यों नहो-

ना०-(अश्वपतिसे) आपकी पुत्री कहां गईथी और किस कार्यकी सिद्धि कर आई-

अ०-यह योग्य वर ढूंढ़ने गईथी (सावित्रीसे) वह कौनसा राजपुत्र किस देशका नरेश और किस वंशका दिवाकर है कि जिसने तुझको अर्धांगी बनाना अंगीकार किया है ?

सा०-शलवा देशके राजा द्युमतसेन वृद्धावस्थाके कारण नेत्रहीन होगये हैं और मंत्रियोंने राज्य छीनकर उन्हें भार्या और पुत्र सहित वनमें निकाल दियाहै उनका पुत्र सत्यवान् जो राज्य भवनमें उत्पन्न और वनमें युवान हुआ है उसे मैंने बराहै-

अ०–पुत्री तेरे कहनेसे जाना जाताहैं कि द्युमत सेन का राज्य नष्ट होगयाहै–

सा०–हे पिताजी ! "मुझे आम खाने या पेड़ गिनने" मुझे राज्यसे क्या प्रयोजन अपने कामसे कामहै–

अ०–क्यों नहीं देखहस्ती बडामोटा ताजा होताहै परंतु छोटेसे हाथ भरके अंकुशके वशमें आजाताहै क्या अंकुश भी हाथीके समान है और छोटेसे दीपकके सामने सारा अन्धकार नष्ट होजाता है इसी प्रकार सबसे बड़ा प्रबल प्रतापही गिना जाताहै और यदि तेरी यही इच्छाहै तो मुनि महाराजसे प्रार्थनाकर इस संबंधकी दीर्घायुका वरदानदें–

सा०–(नारदजीसे) महाराज पिताके वचनानुसार आशीर्वाद दीजिये–

ना०–पुत्री इस समय तेरे सन्मुख मैंबडी लज्जाको प्राप्त होताहूँ तैंने एक बेर आज मांगा और मैं उसके देने में असमर्थहूँ–

अ०–महाराज यह आप क्या आश्चर्यकी बात कहतेहैं कहीं सूर्य भी अपना प्रकाश देनेमें असमर्थ हुआहै–

ना०–राजन् ! मैं सत्य कहताहूँ उस राजपुत्र का शरीर प्रियदर्शनतासे और अन्तःकरण बुद्धिसे प्रकाशमानहै, विद्या, संतोष, सत्य वक्तृता, स्थिरता, साहस और कशाय दमन आदि गुणोंमें परिपूर्ण है, शूरतामें इंद्रके समान है, धर्मज्ञ आज्ञाकारी दुष्टोंका शत्रू और सज्जनोंका हितकारीहै, तेजमें सूर्य, बुद्धिमें बृहस्पति क्षमामें पृथ्वी,शक्ति और दानमें संक्रांतिके पुत्र रंतिदेव, उदारतामें ययाति और बल, वीर्यमें अश्वनी कुमारसेभी

श्रेष्ठहै निदान सर्वगुण सम्पन्नहै इस पृथ्वीपर यदि कोई मनुष्य आपकी कन्याके योग्यहै तो सत्यवानहीहै सर्व भांतिसे "यथानाम तथा गुणाः" है परंतु बड़े शोककी बातहै कि इन सर्व गुणोंमें से कोईभी भयकर समयमें उसका सहायक नहीं होसकता, आजके दिवससे एक सम्बत्सर व्यतीत हुए वह राजकुलभूषण इस असार संसारको त्याग अपने पद पंकजसे स्वर्गको पवित्र करैगा॥

अ०–हा शोक ! सावित्रीका परिश्रम व्यर्थही हुआ महाराज! मैं ऐसे संबन्धसे अपनी बेटीको शोकरूपी कूपमें नहीं डालना चाहता (सावित्रीसे) पुत्री यह तेरा सर्व परिश्रम व्यर्थ हुआ किसी औरको वर–

सा०–पिताजी अपराध क्षमा होतो कुछ विनय करूं-

अ०–अच्छा बेटी कह-

सा०–हे पिताजी! कन्याके निमित्त दूं यहशब्द एकही बार कहा जाताहै, दीर्घायुहो अथवा अल्पायुहो सगुणहो अथवा निर्गुण मैंने सत्यवानको एकबार बरा अब दूसरेको नहीं बर सकती, मनसे निश्चय करके फिर बचनसे कहा जाताहै और पीछे कर्मसे किया जाताहै इस कारणसे मेरे मनको प्रमाणहै, हे पिताजी ! चौसरके खेलमें ऐसा नियम होताहै कि पांसा एकही बार डालाजावे और जो कुछ दावँपडे वह उसकी प्रारब्धका, इसी भांति मैंभी अपना मन एक बेर देचुकी, मैं सत्यवानको अपना पति बना चुकी यदि मेरु गिरि भूमिलों होजाय, अथाह समुद्र जलहीन होजाय और सूर्य जो सदा पूर्वदिशामें उगताहै और पश्चिम दिशामें छिपताहै वह पश्चिममें उगने और पूर्वमें छिपने लगे, तबभी वह मन जो एकबार एकका होचुका फिर

दूसरी बार दूसरेको नहीं दिया जा सकता इस विषयमें आप विशेष न कहैं "ईश्वरेच्छा बलीयसी"

ना०–पुत्री ! ऐसी हठ क्यों करती है तू आज्ञाकारिणी प्रसिद्ध है अपने पिताकी आज्ञाका पालन कर' नहीं तो विधवा अवस्थारूपी अग्निमें जलकर कष्ट उठावेगी, बेटी ! देख उत्तम कुल वृक्षके समान है और सुख सम्पत्ति राज्य आदि पत्तोंके समान है और पुत्र मूलके तुल्य है जब मूल और पात दोनोंही नहीं हुए तो कोरा काष्ठ किस अर्थका–

सा०–महाराज ! मैं पिताकी आज्ञाका कब अपमान करती हूं उन्होंने आज्ञादी कि, स्वयम्वर ढूंढ़ले मैंने उसका पालन किया अब तो यदि अग्निमें कमल उत्पन्नहों और जलमें अग्नि प्रज्वलित होजाय तोभी सावित्री सत्यवानको छोड दूसरा पति अंगीकार न करूंगी–

श्लोक–त्यजेच्च पृथिवी गन्धः मापश्चरसमात्मनः ।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुस्पर्श गुणं त्यजेत् ॥
प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतु स्तथोष्मताम् ।
त्यजेच्छब्दं तथाकाशः सोमः शीतांशुतां त्यजेत् ॥
विक्रमं वृत्रहा जह्याद्धर्म्मं जह्याच्च धर्मराट् ।
नत्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन ॥

अ०–(नारदजीसे) महाराज ! मेरे यही एक पुत्रीहै यदि इसकीभी यह दशा हुई तो मेरा तो सर्वनाश हुआ–

ना०–हे राजन् ! इसका क्या शोच है सपूत गुणवान् और अच्छे आचरणवाली सन्तान एकहीसे सारा कुल सुशोभित और प्रख्यात होजाता है जैसे कि, चंदनके एकही पेडसे साराबन सुगंधित होजाता है (सावित्रीसे) बेटी ! क्या तैंने यह दोहा नहीं सुना–

दोहा–कीजै सुखको होय दुख, यह कह कौन सयान ।
　　वासोने को जारिये, जासों टूटै कान ॥

सा०–किसी कविका ऐसाभी तो वचन है–

दोहा–इकतौ गुणदीन्हों दई, दूजे रूप निबंध।
　　यह दोनों कहँ पाइये, सोना और सुगंध ॥

(अश्वपतीसे) पिताजी ! जो मनुष्य मानकोछोड अपमान सहता और अपना काम निकालताहै वही नीतिज्ञ और बुद्धिमान् है और जो इस नीतिपर नहीं चलता वह पीछे पछताता है–

अ०–बेटी ! विना विचारे कोई कार्य न करना चाहिये क्योंकि अविवेक केवल आपदोंकाही कारण होताहै–

ना०–(अश्वपतीसे) हे राजन् ! गुणी गुणीकेही पास जाताहै वह कहीं क्यों नहो जैसेकि भौंरा यदिवनमें रहताहै परंतु कमलकी वासनाके हेत जलमें ही जा पहुँचताहै, तेरी बेटीकी प्रीति उस राजपुत्रमें दृढ होगई है अब यही उचित है कि इस कन्याका विवाह सत्यवानके साथ करदो ईश्वर इच्छा कुछ अच्छी जान पडती है, जब भ्रमरको गंध मिलजातीहै तो कमलपर जाही बैठताहै यहनहीं शोचता कि रात्री समय कमल के बंदहोजानेसे मैंभी इसीमें बंद होजाऊंगा–

अ०–महाराज ! मुझे इतना शोच औरभी तोहै कि वहां मेरी बेटीका अनादर होगा–

ना०–नहीं! नहीं! राजन् नहीं! यह शंकातो आपकी वृथाहै पत्थरोंके बीच मणिका मूल्य केवल उसके दीप्तसेही अधिक होताहै ऐसेही मनुष्यका सन्मान और आदर सत्कार जगतमें गुणहीसे होताहै आपकी पुत्री तो सर्व गुण सम्पन्नहै इसका अनादर क्यों होने लगा–

अ०-(आपही आप) इसमें तो बुराई स्पष्ट दीख रहीहै यह नारदजीने क्या विचारकर कहा कि ईश्वर इच्छा कुछ अच्छी जान पडतीहै हैं तो मुनि और मुनि भी कैसे कि सर्वज्ञ, कुछ विचारकरही कर कहा होगा यादिमैं इस सम्बंधको नहीं करताहूँ तो भी ठीक नहीं क्योंकि सावित्रीकी प्रीतिकी ज्वाला ऐसी नहींहै कि विना अमृतकी धारा मिले शांति होजाय (प्रगट नारदजीसे) बहुत अच्छा महाराज तो आप भी पधारें अब बडोंकी सम्मति होगई तो इस कार्यको सिद्ध कर-नाहीं उचित है (सावित्रीसे) जाबेटी अपनी मातासे विदाहोआ शुभकार्य में विलम्ब क्यों–

वि०-(सावित्रीसे) बेटी ! अपनी मातासे सत्य-वानके अल्पायु होनेका वृतान्त न कहियो नहीं तो बात बिगड़ जायगी ॥

अ०-(नारदजीसे) चंदनका वृक्ष कितनाही पुराना होजावे परंतु उसमेंसे सदैव सुगंधिही निकलतीहै दुर्गंधि तो कभी निकलनेकीही नहीं देखो बुड्ढेने क्या अच्छी बात कहीहै ॥

ना०--इसमें क्या सन्देहहै स्त्रियोंकी बुद्धि ऐसीही होतीहै (सुलोचनासे) तूभी इस बातका अवश्य ध्यान रखियो--

सु०--बहुत अच्छा महाराज--

सा०--जो आज्ञा--(जातीहै)

(स्थान रनवास)

(मालवी आतीहै)

मा०-(आपही आप) हाय ! मेरा चित्त कैसा कोमलहै एक क्षणभरकोभी स्थिर नहीं रहता सावित्री विना

तो घरमें अन्धकार सा छारहाहै इस भवनको देखकर तो मेरी छाती फटी जाती है, हे जगदीश्वर! परमात्मन्! यदि मेरी अभी यह दशाहै तो बेटी जब अपने पतिके घर जायगी तब न जाने क्या दशा होगी (सावित्री व सुलोचनाको आती हुई देखकर अहलाद पूर्वक सावि-त्रीसे) आ बेटी आ बडी आयुर्बलहै तेरी, अभीमें स्मर्ण ही कर रहीथी–

सा०–(माताके पैरों गिरकर) माताजी ! प्रणाम करतीहूँ–

मा०–(सावित्रीको उठा और छातीसे लगाकर) बेटी कुशलसे तो है ? कहबेटी कहां कहां देशाटन कर आई ? वह चंद्रमा कहां है कि जिसने तुझ कुमो-दिनीको प्रफुल्लित किया ?

सु०–महारानी जू सावित्रीके चंद्रमामें दरिद्रताका धब्बा लगाहुआहै, आपकी पुत्रीने हमसे निस्पृहता करके निज इच्छा और पिताजीकी आज्ञासे अपना विवाह शलवाधीश द्रुमतसेनके पुत्र सत्यवानके साथ ठहरा दिया है और राज्य भवनों को तज वनमें रहना स्वी-कार कियाहै–

मा०–अरी बावरी ! यह क्या बक रहीहै द्रुमतसेन शलवाधीश होकर वनमें काहेको निवास करता होगा-

सु०–महारानी जू ! और दुःखही काहे काहै राज्य तो उसका नष्ट होगया अबतो मूड मुडाये खोपडी दमकाये योगियोंकी भांति वनमें पडाहै और फल पातोंसे पेट भरकर दिनोंको धक्के देताहै, आप हमारी सखीको इतना तो समझाइये कि राजाओंका सम्बन्ध कहीं भिखारियोंसे भी हुआहै–

सा०-(आपही आप) हा शोक ! हाखेद ! यह क्या बक रहीहै । कहीं कुछ और न कहदे (हौले सुलोचनासे) तू बडी चपल है वहांक्या कहती थी और अब यहां क्या भांजी मारने लगी-

सु०-(हौले सावित्रीसे) अपना अपना मतलब सब ही सोचते हैं, मैं भी तो अकेली रहजाऊंगी-

मा०-(सावित्रीसे) क्या सुलोचना सत्य कहतीहै और क्या महाराजकी भी आज्ञा होगई है-

सा०-माताजी ! केवल पिताजीकी आज्ञा और मेरी इच्छाही नहीं वरन् महाराज नारदजीने भी सम्मति देदीहै-

मा०-क्या सबकी बुद्धि पर एक साथही परदा पड़ गया, बेटी ! तैंने हमारे राज्य हमारे प्रताप और हमारे मानका कुछ भी ध्यान न रक्खा, अरी सुलोचना क्या तू सावित्रीके साथ इसीलिये गईथी-

सा०-माताजी ! मुझे तो अपने स्वामीके गुणोंसे ही कामहै राज्य आदिसे क्या काम, कमल यदि कीचडमें रहताहै परंतु अपना काम सूर्यसे ही रखताहै-

सु०-(मालवीसे) इस समय सावित्री अपने पतिके यहां जातीहै आपसे विदा होने और हमको दुःख देने आईहै-

मा०-बेटी उस वनमें तेरा फूलसा शरीर कांटाबन जावेगा वहां कैसे रहेगी कुछ दिन विश्राम तो लेती तू तो आजही फिर चली-

सा०-हे जननी ! शुभ कार्यमें विलंब करनेसे हानि होतीहै इस विषयमें मैं सिवाय अपराध क्षमा करानेके विशेष कुछ नहीं कह सकती पिताजीने भली भांति

विचार करलियाहै अब मुझे विदाकीजिये और आशीर्वाद दीजिये–

मा०–(बहुतशोचकर) जो तेरे मनने यही निश्चयकर लियाहै तो मैं भी आज्ञा देतीहूँ और अपना धर्म जानकर प्रथम कुछ उपदेश करतीहूँ ध्यान लगाकर सुन। हे पुत्री! स्त्रीका धर्म है कि अपने स्वामीको देवता और परमेश्वर समान जाने उसकी आज्ञा में रहे यही समझे कि जैसे उन पुरुषोंको कि जो उसकी आज्ञासे बाहर हैं ईश्वर परमात्मा यथा योग्य दंड देता है ऐसेही अपने पतिकी आज्ञासे बाहर होना महापातक है, सदा मीठे वचन बोले कठोर वचन छोटा हो अथवा बडाहो किसीसे न कहे अधिक लोभ न रक्खेअपने स्वामी व बडोंकी सेवा शुद्ध मनसे करै थोडा या बहुत जो कुछ वस्त्राभूषणादि परमेश्वर दे वही प्रसन्नता पूर्वक पहिने ओढ़े विशेषकी लालसा न रक्खे सत्यको त्याग असत्य कदापि न बोले–सदैव संतोष रखना चाहिये कहावत प्रसिद्ध है कि "सन्तोषी सदासुखी" जैसे भृंगी कीटको देखकर दूसरा कीड़ाभी उसीके रंग होजाता है इसीप्रकार स्त्रीको भी करना उचित है अर्थात् अपने पतिके रंगमें रंग मिलावै ॥

दो०–पति प्रीती जा घट नहीं, सो घट घट कचजानि ।
थिरन रहे जल शील जिमि,ज्यों चलनी बिचपानि॥

सदा प्रेम प्रीतिकेसाथ तन मनसे अपने स्वामीकी सेवा करना और प्रतिदिन हर्ष आनन्दसे चित्त प्रसन्न करती रहना उस आश्रमको राज्य भवन और कांटोंकी वाटिका के गुलाब पृथ्वीको सुन्दर शय्या और बकले

के वस्त्रोंको उत्तम पाटम्बर समझना, सदैव प्रसन्न मुख रहना कोमल वचन कहकर अपने पति और सास श्वशुरको सदैव प्रसन्न रखना तेरा पति बाहरसे कैसाही खेद युत आवे परंतु अपनी सेवा सुश्रूषा और मधुर सम्भाषणसे अति सुखी रखना और सकल विषाद उसके चित्तसे बिसारना अपने मनको व्यर्थ विषय रसकी ओर न झुकनेदेना निर्लज्ज शब्द कदापि मुखसे न निकालना अपने स्वामीके मनको सदा प्रसन्न रखना अपने भर्त्ताकी रुचि जान प्रत्येक काम बडी सावधानीसे करना कोई काम विदुराने योग्य नहो आनन्द विनोदमें दिन व्यतीत करना खेदकी चर्चा स्वप्नमें भी पास न आने पावे विशेष कर अपने पतिके सामने तो कभी कोई ऐसी बात न करनी चाहिये कि जिससे उसको किंचित् मात्र भी चित्तमें क्लेशहो। बेटी ! मनकी प्रकृति पानीकी धारके समान है श्रमकर जिधरको फेरना चाहो उधरही फिर जातीहै परंतु सज्जनको उचितहै कि उसे अच्छे कर्ममें लगावे कभी किसीपर क्रोधित न होना क्योंकि बडा लोहा गर्मको काटता है उन्हीं बकलेके आभूषणोंको सुवर्ण मय और रत्न जटित जानना नारीका सबसे बढ़कर गहना पतिहै उसीको सार सँभाल कर रखना उचितहै और अपने स्वामीकी सेवा ही उसका परम धर्महै किसी कविका वचन है–

चौपाई–एकै धर्म एक व्रत नेमा।
काय वचन मन पति पद प्रेमा॥

हेपुत्री ! विभवका भूषण सज्जनता, शूरताका असत्य न बोलना, ज्ञानका शांति, विद्याका नम्रता, धनका सुपात्र दान–और धर्मका निष्कपट होनाहै परन्तु

शील इन सर्वका भूषण है इस बातका सदैव स्मरण रखियोकि स्त्री अपने पतिसे चाहे जितना कष्ट पावे परंतु उसकी औरोंके साम्हने कदापि निन्दा न करै वरञ्च आपभी उसको भूल जावे यदि अपने पतिकी कोई निंदाभी करै तो जब तक उसको आप ठीक न करले विश्वास न करै बहुधा खोटे मनुष्य अपने लाभके निमित्त विरोध करादिया करतेहैं जो बुद्धिमान् और चतुरहैं वहतो उनका भरोसा करते नहीं परंतु जो मतिमंद हैं सो तो उनके फंदेमें आकर अपना और अपने मित्रका जीवन दुःखदायी करही लेते हैं और उसका अंत यह होताहै कि सदैव क्लेशके कारण वह सुन्दर गुलाब की कलियां कि जो खिलनेपर बहुत से सज्जनोंके चित्तको प्रसन्न करती अपने समयसे पहलेही मुरझा जातीहैं और उन दुष्टजनोंका कुछ नहीं बिगडता वरंच उन्हीं सज्जनोंके मनको पछतावा और खेद प्राप्त होताहै, सासको शरीर सत्कार वस्त्रादिक धारण कराने और पग चप्पी आदि करनेसे, श्वसुरको देवता तुल्य जानकर वचन सत्कारसे और अपने स्वामीको प्रियवचन चातुरी अन्तरकी इन्द्रियोंका जय और इच्छापूर्वक सेवा करनेसे सर्वको शील आदि गुण और स्नेहपूर्वक वार्तालापसे सदैव प्रसन्न रखना उचितहै पतिव्रता स्त्री अपने पतिसे परम मित्रता रखतीहै और एकांतमें उसको अनेक भांतिसे प्रसन्न रखतीहै पुरुष हो चाहे स्त्री अपना शील धर्म कदापि न त्यागना चाहिये क्योंकि नदी का जल जैसा स्वच्छ और निर्मल कि मेघ वृष्टीसे रहताहै दूसरे नालोंसे मिलकर नहीं रह सकता यदि नदीका जल निर्मलहै तो वह उस वर्षाके जलको